आचमनरहस्य

प्रस्तोता : **डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा**
पूर्व प्राचार्य
श्री दादू आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर

सूर्य को अर्ध्यदान से पूर्व ''अन्तश्चरसि भूतानि'' इस मन्त्र के द्वारा आचमन किया जाता है। इस आचमनक्रिया के द्वारा विज्ञानमय आध्यात्मिक सूर्य को अर्ध्यप्रदान किया जाता है। अर्थात् आचमनक्रिया विज्ञानमय आध्यात्मिक सूर्य को अर्ध्य देना है। सन्ध्योपासन व्रतोपनयनकर्म है। सूर्य ही प्राणियों का आध्यात्मिक विश्वामित्र नामक आत्मा है। सूर्य ही अध्यात्म में प्रविष्ट हो कर हमारी आत्मा बनता है। जैसा कि – ''**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च**'' सूर्य ही जंगम व स्थावर संसार का आत्मा है, इस मन्त्रश्रुति से तथा ''तद्यो हंऽसोहंऽसौ सोऽहम्'' जो अध्यात्म में आत्मा है वही वह सूर्य है तथा जो वह अधिदैवत में सूर्य है वही यह आध्यात्मिक विज्ञानात्मा है, इस ब्राह्मण श्रुति से सिद्ध हो रहा है।

यह आध्यात्मिक विज्ञानात्मा उस आधिदैविक सूर्य से आप्यायन (पोषण) प्राप्त करता रहता है, यही व्रतोपायन कर्म है। क्योंकि आप्यायन आधिदैविक सूर्य तथा आध्यात्मिक विश्वामित्र नामक विज्ञानात्मा के संयोग के बिना नहीं बन सकता। अर्थात् विज्ञानात्मा में आधिदैविक सूर्य का अंश आता रहता है, उसी से उसकी परिपुष्टि होती है। किन्तु इसके लिये आगत सूर्यांश की आध्यात्मिक विज्ञानात्मा के साथ एकता अपेक्षित है। इसकी एकरूपता प्रतियोगी आधिदैविक सूर्य तथा अनुयोगी विज्ञानात्मा की निर्मलता तथा मेध्यता गुण पर आश्रित है। इसलिये बाह्य आधिदैविक सूर्यरश्मि की निर्मलता (पार्थिवकृष्णरश्मिरूपतमःपरिहार) के लिये जिस प्रकार अर्घ्यप्रदान कर्म किया जाता है, उसी तरह आन्तरिक (आध्यात्मिक) सूर्यरश्मियों की निर्मलता तथा मेध्यता के लिये यह आचमनकर्म किया जाता है। जैसा कि शतपथश्रुति में बतलाया गया है–

''व्रतमपैष्यन्नप उपस्पृशति। अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति। मेध्या वा आपः। मेध्यो भूत्वा व्रतमुपायानीति। पवित्रं वा आपः पवित्रपूतो व्रतमुपायानीति तस्माद्वा अप उपस्पृशति'' इति।

यजमान व्रत ग्रहण करता हुआ जल का अचमन करता है। मनुष्य स्वाभावतः एकीभावप्रयोजक संगमनयोग्यता से रहित है, क्योंकि वह मिथ्याभाषण करता है। और जल में एकीभावप्रयोजक संगमनयोग्यता

है। वे पदार्थ में संगमनयोग्यता उत्पन्न कर उसे एकीभूत कर देते हैं। मेध्य बन कर व्रतग्रहण करूँ, इसलिए जल का आचमन किया जाता हैं। जल पवित्र है, पवित्र बन कर व्रतग्रहण करूँ इसलिए आचमन किया जाता हैं। उपर्यक्त ब्राह्मणश्रुति में जल को मेध्य व पवित्र बतलाया गया है मेध्य शब्द संगमनार्थक मेधृ धातु से निष्पन्न हुआ है, अत: इसका अर्थ संगमनयोग्यता का आधान करने वाला अथवा जिस वस्तु से जिस वस्तु का आधान किया जाता है, उन पदार्थो में एकताप्रयोजक सम्बन्ध योग्यतोत्पादक तत्व है। पूञ् धातु से निष्पन्न पवित्र शब्द का अर्थ अन्तरायरूप मल का शोधक अथवा जिस पदार्थ में जिस पदार्थ का आधान किया जाता है, उन दोनों की एकता के प्रतिबन्धक दोष का निवर्तक तत्व है, अत: आचमनकर्म द्वारा विज्ञानात्मरूप आध्यात्मिक सूर्य में आधिदैविक सूर्य का जो अंश आ कर उसकी पुष्टि करता है, उसके संगमन की योग्यता उत्पन्न की जाती है तथा उन दोनों की एकता के प्रतिबन्धक मलरूप दोष की निवृत्ति की जाती है।

संध्योपासना में गायत्रीजप, सूर्योपस्थान, अर्ध्यप्रदान तथा आचमन ये चार कर्म ही प्रधान हैं। संध्या दिव्या वाक् से मिश्रित पार्थिव वाक्रूप है, जैसा कि अनुपद ही बतलाया जा चुका है। इस संध्यारूप वाक् के उद्देश्य से ही ये चारों कर्म किये जाते हैं। इन चारों कर्मों से वाक् का ही संस्कार होता है। आचमन कर्म से पूर्व संध्योपासना में जो प्राणायाम कर्म किया जाता है, उससे प्राण का संस्कार होता है, और प्राणायाम से भी पूर्व जो **''ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत''** इत्यादि मन्त्र के द्वारा अघमर्षणरूप आचमन कर्म किया जाता है वह अवभृथ (यज्ञान्त) स्नान की तरह आत्मा का मानसिक स्नान है। सृष्टिकर्तारूप परमात्मा का स्मरण मन की शुद्धि का कारण है, इससे मन की शुद्धि होती है। यही मन का संस्कार है। हमारा आध्यात्मिक विश्वामित्ररूप विज्ञानात्मा मन: प्राणवाङ्मय है।

उपर्युक्त ६ संस्कारों से उस आत्मा के प्रत्येक अंग (मन, प्राण, वाक्) का प्रतिदिन संस्कार किया जाता है और संस्कृत आत्मा ब्रह्मतेज से युक्त हो जाता है। इस प्रकार आधिदैविक सूर्यरूप तथा आध्यात्मिक विज्ञानात्मरूप दोनों विश्वामित्र प्राणों का अहोरात्र के सन्धिकाल में सन्धानकर्म ही सन्ध्योपासन कर्म है। यह द्विजातियों का प्रतिदिन का कर्म है, जिसे उन्हें प्रतिदिन करना चाहिये। इसलिये ''अहरह: सन्ध्यामुपासीत'' यह श्रुतिवचन उसकी दैनन्दिनकर्तव्यता सिद्ध कर रहा है।

यहाँ प्रसंगत: गायत्री के पंचमुख क्या है ? तथा सावित्री गायत्री कैसे बन गयी ? इस विषय में जो आख्यान प्रचलित है, उसका स्वरूप निम्नलिखित है–

एक बार प्रजापति ने यज्ञ करना चाहा किन्तु यज्ञ बिना पत्नी के नहीं हो सकता। इसीलिये भगवान् राम ने

जब अश्वमेध यज्ञ किया उस समय वनवास के कारण सीता के न होने से उन्हें हिरण्यमयी सीता की प्रतिकृति स्थापित करनी पड़ी। उस समय प्रजापति की पत्नी सावित्री नहीं थी, इसलिए गाय के उदर में गोपकन्या को प्रविष्ट कर निकाला गया वह गायत्री बनी। और उसी गायत्री पत्नी को साथ लेकर प्रजापति ने यज्ञ किया। इस आख्यान के वैज्ञानिक रहस्य को जब तक नहीं जाना जाता तब तक वह आख्यान बहुत बेहूदा प्रतीत होता है, क्योंकि गोपकन्या को किस प्रकार गाय के पेट में प्रविष्ट किया जा सकता है और प्रविष्ट होने पर वह गायत्री कैसे बन गयी और वह जीवित कैसे रह गयी ?

किन्तु इस आख्यान से वैज्ञानिक रहस्य को समझने पर सब विसंगतियों का परिहार हो जाता है–

यहाँ ''सूर्य एवास्माकं प्रजापतिः'' इस ब्राह्मणश्रुति के अनुसार इस त्रैलोक्य तथा त्रिलोकी की प्रजा का प्रजापति सूर्य है। क्योंकि सूर्य से ही सारे त्रैलोक्य के पदार्थ उत्पन्न होते हैं। सूर्योदय से पूर्व इस सूर्य प्रजापति ने अन्धकार परिहाररूप यज्ञ करना चाहा, किन्तु उस समय सावित्री न थी। सावित्री से तात्पर्य सूर्यरश्मियाँ ही सावित्री हैं, जो कि सविता के सम्बन्ध से सूर्यपत्नी कहलाती हैं। सूर्योदय से पूर्व पृथ्वीकेन्द्र के सधस्थ भाग में सूर्य था, इस आकाश में नहीं था। अतः आकाश में सूर्यरश्मिरूप सावित्री की सत्ता नहीं थी। क्योंकि सूर्य उस समय आकाश में नहीं रहता है। किन्तु उदयकाल में व अस्तकाल में क्षितिज पर जो सूर्य दिखायी देता है, वह वास्तविक सूर्य नहीं, अपितु काल्पनिक सूर्य है। क्योंकि ऋतपदार्थ में जब सत्य वस्तु प्रविष्ट होती है, तो वह लम्बित अर्थात् तिरछी हो जाती है। जैसे ऋतपदार्थ जल में लकड़ी को डालने पर वह सीधी नहीं रहती अपितु तिरछी हो जाती है। इसी प्रक्रिया को लम्बनक्रिया कहते हैं। इसी प्रकार क्षितिज से नीचे भूकेन्द्र के सधस्थ भाग में सूर्य रहता है। और पृथिवी की काली किरणों में सूर्यरश्मियाँ प्रविष्ट होती हैं तो वे तिरछी हो जाती हैं। क्योंकि पृथिवी से निकलने वाली काली किरणें जिन्हें भूभा कह जाता है, ऋत वस्तु है और सूर्य की किरणें सत्यपदार्थ हैं। अतः वे पृथिवी की कृष्ण रश्मियों में प्रविष्ट होने पर तिरछी हो जाती हैं और तिरछी होकर क्षितिज पर प्रतीत होती हैं। उस समय सूर्य की श्वेत रश्मियाँ पृथिवी की कृष्ण किरणों में प्रविष्ट होकर लम्बनक्रिया द्वारा क्षितिज में प्रतीत होती हैं। ये ही सूर्य की श्वेतरश्मियाँ जो कि वस्तुतः सावित्री हैं, गोरूप पृथिवी की कृष्ण किरणों के सम्पर्क से गायत्री कहलाने लगती हैं।

उक्त पौराणिक आख्यान में गोशब्द से गाय पशु का ग्रहण नहीं है, किन्तु पृथिवी का है। क्योंकि गोशब्द किरण, पृथ्वी, पूषा प्राण तथा गाय पशु सभी का वाचक है। इसी प्रकार आख्यान में गोपकन्या सूर्य की किरणों का बोधक है। क्योंकि गोप का अर्थ सूर्य है और किरणें उस सूर्य से निःसृत होती है, अतः उन्हें गोपकन्या कहा

गया है। गोपकन्या अर्थात् सूर्य किरणें गोरूप पृथिवी के उदर अर्थात् काली किरणों में प्रविष्ट होकर जब बाहर आती हैं, तब वे गायत्री बन जाती हैं। उन्हीं गायत्री के द्वारा सूर्यरूप प्रजापति ने उष:काल में तम:परिहाररूप यज्ञ किया था, यह उस आख्यान का वैज्ञानिक रहस्य है।

भूकेन्द्र के सधस्थ पर विद्यमान सावित्रीरूप सूर्यकिरणों के पृथिवी की काली किरणों में प्रविष्ट होने पर सूर्यकिरणों का वर्ण प्रत्येक घटिका में परिवर्तित होता रहता है। क्योंकि ज्यों ज्यों सूर्य ऊपर आता है, वैसे वैसे श्वेतवर्ण बढ़ता जाता है, और पृथ्वी की काली किरणों का ह्रास होता जाता है। ५ घटी ही प्रकृति में गायत्री रहती है। प्रत्येक घटी में पृथिवी की काली किरणों में सूर्य की श्वेतकिरणरूप गायत्री का वर्ण परिवर्तित होता है। वे ५ रंग मुक्ता, विद्रुम, हेम, नील व धवल हैं। ये ही गायत्री के ५ मुख हैं। इसीलिए गायत्री के ध्यान के पद्य में गायत्री के इन्ही ५ मुखों का वर्णन किया गया है–

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्तीक्षणै:,
युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्वार्थवर्णात्मिकाम् ।
गायत्रीं वरदाभयांकुशकशा: शुभ्रं कपालं गदां,
शंखं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे।।

इसके बाद एक हाथ सूर्य ऊपर जाने पर शुद्ध सावित्री रह जाती है। उसी समय पर सूर्य का दर्शन करना चाहिये। क्योंकि उससे पूर्व उसमें तमोमय आसुरप्राण भी प्रविष्ट रहते हैं, उससे बुद्धि व दृष्टि में विकृति आती है। इसीलिये धर्मशास्त्रों में उदित व अस्त होते हुए सूर्य का दर्शन निषिद्ध बतलाया है। नेक्षेतोद्यन्तमादित्यमस्तं यान्तं तथैव च। किन्तु गायत्री का समय ५ घटी ही है। अत: उसी समय उसका ध्यान व जप करने पर हमें वह तत्व प्राप्त हो सकता है। क्योंकि उस समय प्रकृति में वह तत्व विद्यमान है। प्रात:काल सूर्योदय से ढाई घटी पूर्व तथा ढाई घटी सूर्योदय के बाद तक का तथा सायंकाल ढाई घटी सूर्यास्त से पूर्व तथा ढाई घटी सूर्यास्त के बाद तक गायत्री का समय है। अत: इसी समय सन्ध्योपासना करना उचित है। जैसे–

''प्रात:सन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि।
सादित्यां पश्चिमां सन्ध्यामर्धास्तमितभास्कराम्।।'' इति